श्रीराजेन्द्रप्रवचन-कार्यालय-सिरीज़ ३७



श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छीय-

अक्षयनिधितप-विधि ।

तथा

श्रीपोषध-विधि ।

[illegible]

प्रकाशक—

साध्वी श्रीफूलश्रीजी के सदुपदेश से श्रीसौधर्म
बृहत्तपागच्छीय-जैन श्वेताम्बर-संघ ।
ग्याधरौद (मालवा)

—⁂—

श्रीवीर-नि० २४६९	द्वितीय-संस्करण	विक्रम-सं० १९९९
राजेन्द्रसूरि-सं० ३५	१०००	सन् १९४३ ईस्वी

मूल्य-सदुपयोग ।

मुद्रक-शाह गुलाबचन्द लल्लुभाई, श्री महोदय प्रीन्टींग प्रेस
भावनगर

सूचना—

पौषध-विधि में जहाँ-जहाँ पर खमासमण, या खमा०, इरियावहि०, तस्स उत्तरी०, अन्नत्थ०, लोगस्स०, इच्छाकारेण०, अड्ढाइज्जेसु०, नमुत्थुण०, वंदणवं०, पुक्खरवरदी०, सिद्धाण बुद्धाण० सव्वलोए अरिहंत०, जावंति०, जावंत०, नमोऽर्हत्सिम०, उवसग्गहर०, जय वीयराय०, सकलकुशलवल्ली०, चउकसाय०, करेमि भंते०, सामाइयवयजुत्तो०, अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतर०, सात लाख०, जगचिंतामणि०, मन्हजिणाण, आदि लिखा हो वहाँ पर पूरा—पाठ, एवं गमणागमणे लिखा हो वहाँ 'इरियासमिति भासासमिति' इत्यादि पूरा पाठ बोलना चाहिये। जिस जगह 'इरियावहि' करके लिखा हो वहाँ इरियावहि०, तस्स उत्तरी० अन्नत्थ०, चार नवकार का काउस्सग्ग पार के लोगस्स० कहना समझना चाहिये।



प्राथमिक-वक्तव्य।



खाचरौद-श्रीसंघ की भावना सर्वानुमत से साध्वीजी का सं० १९९९ का चौमासा खाचरौद में कराने की हुई। आज्ञा प्राप्त करने के लिये संघ के तरफ से एक डेप्युटेशन भूति (मारवाड़) में विराजमान प्रातःस्मरणीय आचार्यदेवेश श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज की सेवा में भेजा गया। हमारे भाग्योदय से आचार्यदेवने वयस्थविरा-श्रीपुष्पश्रीजी श्रीमगनश्रीजी श्रीउत्तमश्रीजी और श्रीलक्ष्मीश्रीजी एवं चार साध्वीओं का खाचरौद में चौमासा करने का आज्ञापत्र दे दिया। संघने उस आज्ञापत्र के सहित एक डेप्युटेशन राजगढ़ (मालवा) साध्वीजी के पास भेजा। साध्वीजीने आज्ञापत्र को देख कर खाचरौद में चौमासा करने की जय बोला दी।

बाद साध्वीजी राजगढ़ से विहार कर रास्ते के गाँवों में स्थिरता करती हुई बड़ावदा पधारीं। वहाँ आपके उपदेश से एक जैनपाठशाला और एक जैनसेवामण्डल कायम हुआ। फिर वहां से आप पतलाणा पधारीं। यहां आपके उपदेश से एक अष्टाह्निकामहोत्सव और स्वामिवात्सल्य आदि शुभ कार्य हुए। यहाँ से विहार करके आपका पधारना खाचरौद हुआ और वर्षावास की स्थिरता कायम हुई। व्याख्यान में 'भगवती सूत्र' और भावनाधिकार में 'सम्यक्त्वकौमुदी' बाचना आरम्भ किये-जिसको सुनने के लिये जैन-अजैन श्रोताओं की संख्या अच्छी उपस्थित होती थी। यहाँ साध्वियों के चातुर्मास विराजने से पर्युषणपर्व में अन्दाजन एकसो एक श्रावक श्राविकाओंने अक्षयनिधितप का आराधन करके बड़ी धामधूम से अष्टाह्निका-महोत्सव किया। चातुर्मास में पचरंगीतप और सिद्धितप का भी आराधन भारी उत्साह से हुआ। इन तपों के उत्सवों का निरीक्षण करने के लिये रतलाम, जावरा, मन्दसौर, महीदपुर, नारायणगढ़, बारोदा,

पचलाणा, वरडावदा, आलोट, वडनगर आदि गाँवों के श्रावक श्राविकाओंने भी पधार कर लाभ प्राप्त किया था। इस प्रकार सारा चतुर्मास तपस्या, प्रभावना, पूजा, रथयात्रा, वरघोडा आदि धार्मिक कार्यों के साथ सोत्सव सानन्द व्यतीत हुआ।

प्रस्तुत 'श्रीअक्षयनिधितपविधि तथा पौषधविधि' नामक पुस्तक गुरुणीजी–श्रीमानश्रीजी श्रीमनोहरश्रीजी श्रीभावश्रीजी की आज्ञावर्त्तिनी शान्तस्वभावशालिनी–श्रीमति–साध्वीजी–श्रीसोहनश्रीजी के स्वर्गारोहण के स्मारक रूप में साध्वीजी श्रीफूलश्रीजी, मगनश्रीजी, उत्तमश्रीजी, लक्ष्मीश्रीजी के सदुपदेश से खाचरोद–जैनसंघने छपा कर प्रकाशित की है। इसके जिज्ञासु भाईबहिनों को पोस्टखर्च भेज कर पुस्तक मगा लेना चाहिये। पुस्तक मिलने के पते पुस्तक में पिछले पृष्ठ पर छपे हुए हैं।

संवत् २००० }
चैत्रशुक्ला ५ }

मुनि–विद्याविजय।
मु० सियाना (मारवाड)



प्रासंगिक-प्रदर्शन।



संसार में जिस प्रकार अविधि से खेत में डाला हुआ बीज वृद्धि नहीं पाता, अविधि से लगाया हुआ बाग सफल नहीं होता, अविधि से बनाया गया भोजन परिणाम-सुन्दर नहीं होता और अविधि से किया हुआ कोई भी कार्य कार्यरूप में परणित नहीं होता। उसी प्रकार पूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, आदि धार्मिक-क्रियाएँ भी अविधि से वास्तविक फल-प्रदाता नहीं होतीं। इसीसे शास्त्रकार महर्षियोंने हरएक धार्मिक-क्रिया का विधि-विधान कायम किया है और स्पष्ट लिखा है कि आत्म-हित की चाहना रखने एवं संसार-परिभ्रमण का दुःख मिटाने की अभिलाषा रखनेवाले पुरुष-स्त्रियों को धर्म सम्बन्धी प्रत्येक क्रिया विधि पूर्वक ही करना चाहिए। जो लोग विधि-मार्ग की अवहेलना कर, या शून्य-मनस्क हो धर्म-क्रियाओं का आचरण करते हैं, उन्हीं को उनका यथार्थ फल-लाभ नहीं मिलता।

शास्त्र-निर्दिष्ट अनेक धर्मक्रियाओं में से पौषध भी एक साधु के समान उत्तम प्रकार की क्रिया है, जो धर्म को परिपुष्ट करनेवाली और दुःख सन्ताप का नाश करनेवाली है। इसमें सावद्य व्यापार का त्याग, शरीर-विभूषा का परिहार, ब्रह्मचर्य का पालन और यथाशक्ति उपवास, आयंबिल, निविगइ या एकासणा तप का आचरण किया जाता है, एवं प्रतिलेखनादि क्रियाएँ साधुवत् जयणा पूर्वक की जाती

श्रावकों के लिये क्रमिक आत्म-विकासार्थ जो द्वादश व्रत बतलाये गये हैं, उनमें से यह ग्यारहवा, चार शिक्षाव्रतों में से तीसरा शिक्षा-व्रत है जो चार पहर, आठ पहर या अधिक अवधि तक भी अपनी इच्छा के अनुसार किया जा सकता है। इस व्रत के प्रभाव से सुव्रतसेठ आनन्दादि अनेक भव्य परमानन्द विलासी बने हैं। इसीसे कहा जाता है कि-' भवोरगमदच्छेदे, पौषधव्रतपौषधव्रतम् '-संसार-रूप सर्प का मद उतारने में यह व्रत पौष-मास के समान है।

प्रस्तुत पुस्तक में इसी पौषध-व्रत की विधि बड़ी सुगमता से गुम्फित है-जिसको वाच कर अल्प-पठित पुरुष-स्त्री भी अपनी पौषध-क्रिया सद्रुलियत से कर सकते हैं। वर्तमान में प्रेसों का साधन होने से 'पौषधविधि' की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, उनमें प्राय विधि की समानता नहीं है। इस कारण इस फेर-फार के लिये कभी कभी पौषध-कारकों में परस्पर कलह भी पैदा हो जाता है जो इसकी आराधना को दूषित किये बिना नहीं रहता। यहाँ तक कि वैमनस्य के वजह से लोग पौषध करना भी छोड़ देते और प्रत्युत उसकी निन्दा करने लग जाते हैं, अत इसकी विधि की समानता होना जरूरी है। बस इसी हेतु को लक्ष्य में रख कर श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छ में सब जगह समान रूप से पौषधविधि प्रचलित होने के लिये यह विधि तैयार करके छपा कर प्रकाशित की गई है, अस्तु। पौषध, दिशावकासिक और सामायिक कार्यों को क्रिया की निर्दोषता के लिये नीचे के दोष भी टालने की खप रखना चाहिये। इन क्रियाओं के करते समय आभूषण-गहना, ईंगलिश-छोटी घड़ी, स्वर्णमय-बटन आदि जोखिमी कोई चीज पास में नहीं रखना

चाहिये। ऐसी चीजों को सम्भाल रखने या गुम जाने की चिन्ता रहती है, यदि गुम जाय तो आर्त्त-रौद्र भी पैदा होता है-जिससे उन क्रियाओं में दोष लगता है।

पौषध के पांच अतिचार—

" १-शय्या-संथारा की भूमि अच्छी तरह नहीं देखना और देखे तो बराबर नहीं देखना। २-शय्या-संथारा की जमीन अच्छी तरह नहीं पूंजना और पूंजे तो बराबर नहीं पूंजना। ३-स्थंडिल-मात्रा करने की भूमि अच्छी तरह नहीं तपासना, तपासे तो बराबर नहीं तपासना। ४ स्थंडिल-मात्रा तथा पोसहशाला की जगह नहीं पूंजना और पूंजे तो बराबर नहीं पूंजना। ५-पौषध अधूरा पारना, पौषध में घर या व्यापार की चिन्ता करना और पौषध के दोष टालने की राय नहीं रखना।"

पौषध के अठारह दोष—

" बिना पौषधवाले का लाया हुआ आहार, पानी आदि वापरना १, पौषध में सरस-स्निग्ध भोजन करना २, उत्तर पारणा में पुष्टिकर विविध सामग्री वापरना ३, पौषध में या उसके निमित्त देह-विभूषा करना ४, पौषध में वस्त्र धोना, धुलाना ५, पौषध में पहनने के लिये आभूषण बनवाना या पहनना ६ पौषध के लिये वस्त्र रंगवाना या रंगना और पौषध में रंगीन वस्त्र वापरना ७, पौषध में शरीर का मैल उतारना, उतरवाना ८, पौषध में अकारण सोना, या बैठे बैठे नीन्द लेना और रात्रि को संथारा पोरिसी भणाये बिना या संथारा किये बिना सो जाना ९, पौषध में स्त्रियों की कथा कहना १० पौषध में भोजन-कथा करना ११, पौषध में राजकथा करना १२, पौषध में देशकथा करना-उसके भले

धुरेपन का वर्णन करना १३, पौषध में जमीन को बराबर देखे पुजे बिना मात्रा या स्थण्डिल परठना १४, पौषध में किसीकी निन्दा करना, कठोर वचन बोलना और चुगली खाना १५, पौषध में माता पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र आदि सम्बन्धियों से सावद्य वार्त्तालाप करना या इनका अधिक परिचय रखना १६, पौषध में चोरों, हरामियों और संसारियों की कथा प्रशंसा करना १७, तथा पौषध में स्त्रियों के अंगोपांग देखना, उनके साथ हास्य कुतूहल करना और रागोत्पादक बातें करना १८। "

दिशावकासिकपौषध के ५ अतिचार—

१ प्रमाण में रक्खी हुई भूमि के बाहर से किसीके द्वारा कोई वस्तु मगाना। २ प्रमाणित-भूमि के बाहर किसीको किसी कार्य के वास्ते आदेश देना या किसी के द्वारा कोई चीज मगाना। ३ नियमित-भूमि के बाहर रहे हुए मनुष्य को खुंखार करके किसी कार्य के लिये सूचना देना। ४ नियमोपरान्त भूमि के बाहरवाले मनुष्य को अपना रूपादि दिखा कर बिना बोले अपने पास बुलाना। ५ नियमित-भूमि के बाहर रहे हुए मनुष्यों को कंकर आदि फैंक कर कोई सन्देश कहना।

सामायिक के ५ अतिचार—

१ घर, हाट, आदि के सावद्य व्यापार की मन में चिन्ता करना। २ गाली, कठोर-भाषा और मर्मवचन बोलना। ३ सावद्य-कार्यों में काया को प्रवृत्त करना, बिना पूजे बैठना, भींत आदि का ओठा लेना। ४ सामायिक अधूरी पारना या उसका आदर न करना। ५ निन्द्रादि प्रमाद से सामायिक की या नहीं ? इस प्रकार स्मृति-विहीन होना।

सामायिक के बत्तीस दोष—

" मन के दश दोष—१ दुश्मन को देख कर रोष करना, २ विवेक न रखना, ३ सूत्रार्थ की चिन्ता न करना, ४ मनमें उद्वेग रखना, ५ यश की वाञ्छा करना, ६ गुर्वादि का विनय न करना, ७ लोकापवाद के भय से सामायिक करना, ८ व्यापार की चिन्ता करना, ९ फल का सन्देह रखना, १० धनादि प्राप्ति का नियाणा करना। "

" वचन के दश दोष—कुवचन बोलना १, हुंकारा करना २ पाप का आदेश देना ३, लवारी करना-अधिक बातें करना ४, कलह-कदाग्रह करना ५, आना जाना कहना ६, गाली देना ७, बालकों को रमाना ८ विकथा करना ९, हास्य, मश्करी करना १० । "

" काया के बारह दोष—१ चल-विचल आसन रखना, एक आसन से न बैठना, २ दिशा-विदिशा में देखना, ३ पाप कार्य करना, ४ आलस्य से शरीर को मरोड़ना, ५ गुर्वादिक की आशातना करना, ६ भींत या स्तम्भ आदि का ओठा लेना, ७ देह का मैल उतारना, ८ बार-बार खुजाना, ९ पग ऊपर पग चढ़ा कर बैठना, १० गुह्येन्द्रिय को उघाड़ी रखना, ११ शरीर को वस्त्रादि से ढांकना, १२ निद्रा लेना । "

इन दोषों के अलावा कायोत्सर्ग और वन्दन के दोष भी टालने की यथाशक्ति खप रखना चाहिये । निर्दोष सामायिक, पौषध और दिशावकाशिक करने से ही वास्तविक फल-लाभ मिलता और कर्मों की निर्जरा होकर जन्म-मरण का दुःख मिटता है ।

अक्षयनिधितप-माहात्म्य—

जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध भरत-क्षेत्र की राजगृह-नगरी में 'सवर' नामक सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम 'गुणवती' था। पूर्वजन्मार्जित पाप-कर्म के उदय से उनके घर में दुःख और दारिद्र का निवास था। द्रव्य का अभाव होने से उनका आजीविका-कार्य बड़े सकट से चलता था। कुछ काल के अनन्तर गुणवती के गर्भ रहा-उसके प्रभाव से सेठ को व्यापार में उत्तरोत्तर धन-लाभ होने लगा। अन्य व्यापारी भी उसको योग्य सहयोग देने लगे। इस प्रकार सवर के घर में दिन-दूनी और रात-चौगुनी धन-राशि एकत्रित होने लगी। स्वल्पकाल में ही वह धनद के समान बड़ा धनपति बन गया और लोगों में सर्वत्र वह भारी यशमान हो गया।

गर्भ-स्थिति परिपूर्ण होने बाद गुणवतीने एक अति स्वरूपवती पुत्री को जन्म दिया-उसकी नाल दाटने के लिये गाड़ा खोदते समय भूमि से अशर्फियों के भरे हुए कलश निकले। यह बात राजा के पास पहुँची, उसने और शहर की जनताने सेठ को बड़ा भारी सन्मान दिया। सेठने आनन्दित होकर पुत्र जन्मोत्सव के समान महोत्सव करके अपनी प्रियपुत्री का नाम 'सुन्दरी' कायम किया। क्रम से वह द्वितीया के चन्द्र-सदृश अवस्था, कला विज्ञान, रूप-सम्पत्ति और लावण्य से अपने नाम को सार्थक करने लगी। बाल-क्रीड़ा करते समय सुन्दरी जहाँ-जहाँ जमीन खोदती थी, वहाँ-वहाँ से अनेक मणि, माणिक, मोतियों से भरे हुए कलश निकलते थे। कहा भी है कि—

पदे पदे निधानानि, योजने रसकुम्पिका ।
भाग्य-हीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ १ ॥

-भाग्यशालियों के लिये जगह-जगह निधान और योजन-योजन पर रस-कुम्पिकायें विद्यमान हैं। परन्तु पृथ्वी बहुरत्नवाली होने पर भी वे भाग्य-हीनों को दिखाई नहीं देते।

सुन्दरी धीरे-धीरे युवावस्था को प्राप्त हुई, उसकी शरीर-शोभा रम्भा-उर्वशी या रति-प्रीति के समान विशेष दीखने लगा। 'योग्य कन्या योग्य वर को दी जाय तभी दाम्पत्य सुख मिलता है' सेठ के मन में इस चिन्ताने विलास करना आरम्भ किया। आखिर उसी राजगृह नगरी में समुद्रप्रिय सेठ का लड़का 'श्रीदत्त' मिल गया, जो सुन्दरी के अनुरूप वय और गुण में सम्पन्न था। सबरसेठने अत्यन्त धाम-धूम स अपनी प्रियपुत्री सुन्दरी का विवाह श्रीदत्त के साथ कर दिया और दहेज में विपुल धन-सम्पत्ति दी।

ससुर के घर में सुन्दरी के पैर पड़ते ही अगणित निधान प्रगट हुआ-जिससे ससुर-पक्ष क लोगों को अनहद आनन्द हुआ और सुन्दरी की यश कीर्ति बढ़ने लगी। सुन्दरी के मोसाल-पक्ष के लोगोंने भी बड़े आग्रह के साथ सुन्दरी को जीमने का आमन्त्रण दिया जहाँ वह जीमने को गई और निधान प्रगट हुआ। इस प्रकार सुन्दरी जहाँ-जहाँ गई वहाँ-वहाँ उसके चरण पड़ते ही निधान प्रगट होने लगे, इससे उसका मान-पान अधिकाऽधिक बढ़ गया। एकदा वहाँ पर अनेक शिष्यों के परिवार से श्रीधर्मघोषाचार्य का पधारना हुआ। राजा आदि सभी वन्दन करने और उपदेश श्रवण के लिये उनकी सेवा में उपस्थित हुए। आचार्य-भगवान्‌ने समयानुकूल धर्मदेशना देते हुए फरमाया कि—

मनुष्य जन्म को सफल करने के लिये जिनेश्वरोंने दान-शीलादि चार प्रकार का धर्म बताया है। उसमें तपो धर्म की आराधना करने से अपूर्व-पुण्य का बन्ध होता है, जिससे उसे आगामी भव में महान सुख-सम्पत्ति मिलती है। तप निकाचित (अवश्य भोगने योग्य) कर्मों को भी अग्निगोला के समान जला कर नष्ट कर देता है। तपस्या के प्रभाव से ही मनुष्य उभय-लोक में मनोहर रूप, दीर्घायु, आरोग्यता, शारीरिक-बल और अटूट धनसम्पत्ति प्राप्त करता है। जो तप या उसके करनेवाले का अनादर करता है, वह रोगी और दरिद्र अवस्था का पात्र बनता है, इतना ही नहीं, किन्तु उसे सदा अपना जीवन गुलामी और निराशा में बिताना पड़ता है।"

व्याख्यान के अनन्तर सुन्दरीने नम्र-भाव से पूछा कि-स्वामिन्! पूर्वभव में मैंने कौनसा धर्माराधन किया? जिससे मुझे स्थान-स्थान पर निधान और यश मिला। आचार्यदेवने फरमाया कि—

"धातकीखण्ड के पूर्व-भरतक्षेत्र में 'खेटकपुर' नामक नगर था, उसमें 'सयम' नामक सेठ रहता था जो धर्म और धन-सम्पत्ति में विश्व-विख्यात था। उसकी पत्नी का नाम 'ऋजुमती' था जो नाना प्रकार के तप करने और ज्ञानाराधना करने में सदा अनुरक्त रहती थी। लोग भी उसके तप की और उसका खूब अनुमोदना करते थे। उसके पाड़ोस में रहनेवाली वसु सेठ की स्त्री 'सोमसुन्दरी' ऋजुमती की प्रशंसा सुन कर अत्यन्त जलती और निन्दा करती थी। कहा भी है कि—

भूख्यो ब्राह्मण खाय धोर, चांप्यो नाग नासतो चोर।
राड मांड ने मावो साद, ए मावथी ऊभरिये मांड ॥

किसी समय संयम-सेठ के पाडोस में आग लगी, वह संयम सेठ के घर के समीप भी आ पहुंची। लोगों को मालूम होने लगा कि अब संयम का घर बचना मुश्किल है। सोमसुन्दरी मन ही मन आनन्द मनाने लगी कि संयम का घर अब तो अवश्य नाश हो जायगा, परन्तु ऋजुमती के तप-प्रभाव से संयम के घर का एक अंश भी नहीं जला, सारा अग्नि-प्रकोप अपने आप शान्त हो गया। सोमसुन्दरी के सारे मानसिक मनोरथ रसातल में चले गये और वह मन ही मन गिड़-गिड़ाती रह गई। इसी प्रकार एक बार चोर-डाकुओं की धाड नगर में आई, इसमें सोमसुन्दरीने सोचा कि-अब की बार संयम-सेठ का घर लुट जायगा। लेकिन ऋजुमती के तप प्रभाव से चोरों की संयम के घर पर दृष्टि तक नहीं पड़ी, उसका बालाग्राम नुकसान नहीं हुआ। आखिर संयमसेठ और ऋजुमती धर्मध्यान में वर्तते हुए मर कर देवलोक चले गये।

सोमसुन्दरी ईर्ष्या और आर्त्त-रौद्र ध्यान से मरणासन्न हुई, एक श्रावक के मुख से नवकार महामंत्र सुना-जिसके प्रभाव से मर कर मथुरा नगरी के जितशत्रु राजा के यहाँ चार राजकुमारों के ऊपर 'सर्वसिद्धि' नामक पुत्री हुई। किसी शत्रुराजाने जितशत्रु पर चढ़ाई की, उसमें जितशत्रु मारा गया। शत्रुराजाने सारी मथुरा को लूट ली और सर्वसिद्धि पर भी भारी संकट आ पड़ा। अपनी प्राणरक्षा के लिये सर्वसिद्धि वहां से रात को अकेली भाग निकली। सारी रात इधर-उधर घूमती रही प्रातःकाल थक कर वह एकान्त स्थान पर बैठ गई। कोई विद्याधर उसके रूप लावण्य पर मुग्ध-बन

कर उसको ले गया और उसने उसके साथ विवाह कर लिया। विवाह होते ही विद्याधर का सर्व ऋद्धि समेत मकान अग्नि से जल गया। अत विद्याधरने सर्वर्द्धि को अनिष्ट समझ कर उसी जगल में छोड़ दी। उस पर एक पल्लीपति की दृष्टि पड़ी, उसने उसको अपने घर में स्त्री बना कर रक्खी। तीसरे दिन ही पल्लीपति का सारा घर जल कर खाक हो गया-जिससे उसने भी उसको निकाल दी। कोई सार्थवाह उसको लेकर चला, पर रास्ते में चोरोंने सार्थवाह का सब धन-माल लूट लिया, वह भी सर्वर्द्धि को छोड़ कर चला गया। इस तरह सर्वर्द्धि सर्वत्र तिरस्कार पाती हुई और दु खी होती हुई उसी जगल के एक तालाब की पाली पर खड़ी होकर अपने कृतकर्म का पश्चात्ताप करने लगी। भाग्य योग से कोई तपस्वी मुनि विहार करते हुए उसी तालाब की पाली पर आ विराजे। सर्वर्द्धिने हाथ जोड़ कर उनसे पूछा कि—'मैंने ऐसा कौन पापकर्म किया जिससे मुझे स्थान स्थान पर दु ख के सिवा और कुछ भी सुख नहीं मिलता ?।'

मुनिवरने ज्ञानबल से कहा कि-पिछले भव में तूने तप और तपस्वियों की बहुत निन्दा की और उनका अनिष्ट करना चाहा है। उसी कर्मोदय से राजपुत्री होने पर भी तेरे को भारी दु ख देखना पड़ा और देखना पड़ेगा। इस दु ख से छुटकारा पाने की इच्छा हो तो 'अक्षयनिधितप' करना चाहिये। जो विधिशुद्धि और अन्त करणशुद्धि से इस तप का आराधन करता है, उसके पास विघ्न और दारिद्र नहीं आते, वह प्रतिदिन इसके प्रभाव से अखूट सुख-समृद्धि पाता है।

सर्वर्द्धिने मुनिवर की बतलाई हुई विधि से यथाशक्ति अक्षयनिधितप का आरम्भ किया। उसको उसने प्रथम, द्वितीय

और तृतीय वर्ष में उत्तरोत्तर सामान्य विधि से और चतुर्थ वर्ष में विशेष विधि से आराधन किया। तप के पूर्ण होने पर वहाँ विद्याधरों का एक समूह क्रीडार्थ आया, उसमें वह विद्याधर भी था–जिसने पहले सर्वर्द्धि के साथ शादी की थी। कई दिनों के बाद प्राप्त अपनी प्रियपत्नी सर्वर्द्धि को वह अपने अन्तःपुर में ले गया, वहाँ वह आनन्द से रहने लगी। विद्याधर के आश्रय में रह कर सर्वर्द्धिने अक्षयनिधि तप की आराधना बड़े समृद्ध भाव से की। उसीके प्रभाव से मर कर तू नगरशेठ की 'सुन्दरी' नामक पुत्री हुई है। पूर्व भव में अक्षयनिधि तपाराधन करने से तेरे को स्थान-स्थान पर निधान और यश प्राप्त हुआ है।"

गुरु के मुखारविन्द से अपना पूर्व-भव सुन कर सुन्दरी को जातिस्मरणज्ञान हुआ, उससे उसने अपने पूर्वभव का स्वरूप यथावत् देखा। प्रसन्न चित्त से गुरु को वन्दना करके सुन्दरी अपने घर आई और उसने समृद्ध-भाव, पव विशाल राय से अक्षयनिधितप का प्रारम्भ किया। उसमें अनेक राजा, मन्त्री, राणी, सेठ, सामन्त आदि लोग भी शामिल हुए। तपाराधना में सुन्दरी के उदार दिल को देख कर लोगोंने उसका नाम 'अक्षयनिधि' रक्खा और वह उसी नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हुई। देवताओंने भी प्रसन्न होकर उसके ऊपर पुष्प-वृष्टि की। इस प्रकार सानन्द सुखभोग करते हुए सुन्दरी को दिव्य-स्वरूप चार पुत्र और चार पुत्रियों की प्राप्ति हुई। अन्त में विषय-वासना से विरक्त होकर सुन्दरीने भागवती दीक्षा ली। उसका भले प्रकार परिपालन कर और शुक्लध्यान से घनघाती कर्मों का नाश कर उसने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। अवशिष्ट आयु पूर्ण होने पर -

अनन्त और अव्याबाध स्थान पर जाकर जन्म-मरण के दुःख से सदा के लिये छुटकारा पाया।

'अक्षयनिधितप का कितना अपूर्व और अचिन्त्य महत्त्व है?' यह ऊपर के दृष्टान्त से भलीभाँति समझ में आ सकता है। इसलिये जो पुरुष या स्त्री अपनी शक्ति के अनुसार विधि-विधान के साथ इस तप का आराधन करते हैं, वे भी सुन्दरी के समान उभय लोक में अखण्ड सुख-समृद्धि के भोक्ता बनते और सदानन्दी पद (मोक्ष) पाते हैं।

ध्यान में रखने योग्य बातें—

अक्षयनिधितप का आरम्भ चैत्री-पंचाङ्ग के अनुसार भाद्रवावदि ४ से किया जाता है और इसकी पूर्णता पन्द्रह दिन में होती है। इसमें प्रति-दिन एकासणा, छेल्ले दिन उपवास और सोलहवें दिन बियासणा किया जाता है। अगर कोई निविगई आयबिल या एकान्तर उपवास करके भी इस तप की आराधना करना चाहे तो कर सकता है। आयबिल में नमक, कालीमिरच आदि चीजें नहीं वापरना, किन्तु आलोना भोजन करना चाहिये। कल्पसूत्र श्रवण वाचन और मोटी तपस्या करने के कारण पर्युषणपर्व के अन्दर इस तप की आराधना का मौका न मिल सके तो श्रावण, आसोज या कार्त्तिक में भी आराधना की जाय तो कोई हरकत नहीं है। परन्तु पागीघर, आसोज ओली और ज्ञानपंचमी, इनमें से कोई भी पर्व शामील लकर आराधना करना चाहिये।

यों तो यह तप चार वर्ष में पूरा होता है, परन्तु अशक्ति के कारण एक या दो वर्ष भी किया जाय तो भी लाभ-दायक ही है। तप की समाप्ति होने पर इसका यथाशक्ति

उजमणा (उद्यापन) भी कर लेना चाहिये-जिसमें विविध जाति के फल-फूल, पक्वान्न, सूत्र-ग्रन्थ और ज्ञानोपकरण चढ़ा कर अष्टाह्निकोत्सव पूर्वक अष्टोत्तरिशत-शान्तिस्नात्रपूजा भणाना और सधर्मीवात्सल्य करना चाहिये ।

जितने दिन यह तप किया जाय, उतने दिन तक भूमि-शयन, ब्रह्मचर्य परिपालन, मन-वचन-काया का संयम कलह-कदाग्रह का त्याग, रातदिन स्वाध्याय-ध्यान में वर्त्तना, सांसारिक व्यापार-धन्धों का त्याग और क्रोधादि प्रमादों का परिहार करना चाहिये । तप का वास्तविक फल योग्य विधि-विधान का उपयोग रखने और कषायों को छोड़ने से ही मिलता है । अतएव तप आराधना का जो विधि हो उसको उसी प्रकार शान्ति पूर्वक करना चाहिये ।

इसी प्रकार तीनों टाइम उत्कृष्ट देववन्दन, दोनों टाइम प्रतिक्रमण, जिनप्रतिमा की पूजा 'ॐ ह्रीं नमो नाणस्स' इस पद की बीस माला गिनना, चावलों के पकवान्न स्वस्तिक करके उन पर बादाम-सोपारी मेलना, एकावन लोगस्स का काउस्सग्ग करना और श्रुतज्ञान के दोहा बोल कर खमासमण पूर्वक बीस प्रदक्षिणा देना, इत्यादि क्रिया भी शान्त चित्त से सदा करना चाहिये ।

तप आरम्भ करने के एक दिन पहिले तप करनेवाले श्रावक-श्राविकाओं को भेले होकर शुभ चोघड़िया में जिन मन्दिर, धर्मशाला, उपाश्रय या अन्य निर्दोष स्थान में ऊँचे आसन पर जिस में पन्द्रह सेर चावल समा सकें ऐसा तावा, पीतल, चांदी या मिट्टी का कलश (घड़ा), चावलों का स्वस्तिक करके स्थापन करना, उसमें केशर का साथिया

करके रुपा नाणा मेलना, उसके मुख पर श्रीफल रख कर ऊपर लाल-धोला धरका लच्छा (मोली) से बांध कर फूलों की माला पहिराना। कलश के दहिने भाग में अखण्ड-दीपक और बांये भाग में कल्पसूत्र या अन्य किसी भी सूत्र की पुस्तक रखना। सामने एक त्रिगडा में छोटी धातुमय जिन प्रतिमा या सिद्धचक्र का धातुमय गट्टा रखना और सारे कम्पाउन्ड को चन्दुवा पूठिया से सिणगारना। अक्षयनिधि तप की आराधना-विधि हमेशा इसी कलश के सामने करना चाहिये।

प्रातःकाल में राइयपडिक्कमण करके इस तप संबन्धी ' ॐ ह्री नमो नाणस्स ' इस पद की बीस माला गिन ली जाय और ' अक्षयनिधितप आराधनार्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ० ' कह कर पचावन लोगस्स का काउस्सग्ग कर लिया जाय अथवा उस वक्त टाइम न मिलने पर देवसियपडिक्कमण किये बाद रात को भी कर लिया जाय तो कोइ हर्जा नहीं है। अपनी सहुलियत के मुताबिक किसी भी समय पर माला गिन लेना और काउस्सग्ग कर लेना चाहिये।

—विजययतीन्द्रसूरि।



अक्षयनिधितप-विधि।



प्रातःकाल में तप-कारक श्रावक-श्राविका को प्रथम जिनप्रतिमाजी की पूजा करके स्नात्रपूजा भणाने बाद कलश के सामने बाजोट के ऊपर चावलों के एकावन साथिया कर उन पर बदाम, सुपारी, पतासा और यथाशक्ति पैसा या आनी चढ़ना। फिर एक खमासमण दे कर 'इच्छाकारेण सदिसह भगवन्! इरियावहिय पडिक्कमामि? इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए०, तस्स उत्तरी०, अन्नत्थ०' कह कर एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग करके लोगस्स कहना। फिर 'इच्छाकारेण सदिसह भगवन्! श्रीअक्षय निधितप आराधनार्थ चैत्यवन्दन करु? इच्छं' कह कर नीचे का चैत्यवदन कहना।

शासनपति महिमा-निधि, वर्द्धमान जिनदेव।
वासव नरपति आय के, सेव करे नितमेव॥ १॥

समवसरण में बैठ के, भाख्यो भवि हितकार।
अक्षयनिधितप आदरो, ज्ञान-रयण दातार॥ २॥

चेइयवंदन पडिकमण, ब्रह्मचर्य-व्रत धार ।
ज्ञान ज्ञानि की सेवना, करिये चित्त उदार ॥ ३ ॥

सूत्रें तप बहुविध कह्या, शिवसुख दायक जेह ।
अक्षय वैभव पामवा, ए तप पण गुण गेह ॥ ४ ॥

विधियुत जे आराधशे, थिर कर मन वच काय ।
सूरियतीन्द्र-पद ते लहे, सुन्दरी सम सुखदाय ॥५॥

'नमुत्थुण०' बोलके 'आभवमखंडा' तक जय वीयराय कहना । फिर दो खमासमण दे कर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! चैत्यवन्दन करूं ? इच्छ' कह कर नीचे का चैत्यवन्दन कहना ।

भव-भंजन जिनवीरनो, वर्ते शासन आज ।
आगमवाणी तेहनी, राजे सयल समाज ॥ १ ॥

सम्यग् श्रुत की संपदा, सहज सत्य प्रमाण ।
विषमा पंचमकाल में, करे शुद्ध सरधान ॥ २ ॥

अक्षयनिधि-तप तेहमां, भाख्यो केवलिराय ।
विधि संयुत आराधतां, कर्म-रोग मिट जाय ॥ ३ ॥

चरम जिनेश्वर-शासने, द्योतित तपः प्रकाश ।
सूरियतीन्द्र तप भावने, वन्दे भाव हुलास ॥ ४ ॥

'जं किंचि नामतित्थं०, नमुत्थुणं०' खड़े होकर 'अरिहंतचेइयाणं०, अन्नत्थ०' कह कर एक नवकार

का काउस्सग्ग कर, पार कर 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' बोल कर नीचे की थुई कहना।

सेवो भविषण तपपद भावे, द्वादश भेद विचारी जी,
बाह्य अभ्यन्तर करता भर्के, कर्मकष्ट अघ टारी जी।
अन्तर आतम ध्यान अभ्यासे, संवर ममता वारी जी,
अनुपम लीला सपद पावे, अविचलपद अधिकारी जी १

'लोगस्स०, सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं०, अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग कर, पार कर नीचे की थुई कहना।

समवसरण में कनकसिंहासन, त्रिभुवन नायक राजेजी
धीमथानक तप करता पामे, सुखसमृद्धि समाजे जी ॥
वीरादिक चोवीस जिनेश्वर, तप करी कर्म खपाया जी।
निर्मल केवल जेहनु शासन, वर्त्ते जग सुख-दायाजी॥

'पुक्खरवरदी०, सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग वंदणवत्तियाए०, अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग कर, पार कर 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' बोल कर नीचे की थुई कहना।

कर्म महीधर भेदन पवि सम, तपवर बहुविध जाणो जी।
अक्षयनिधि गुण-सपद दाता, श्रुतधर सूत्र प्रमाणो जी॥

गुरुगम विधि उद्यापन माथे, आराधो भलि भावे जी।
सूरियतीन्द्रशिव सुन्दरी वरवा, अहनिशतपनेध्यावेजी

'सिद्धाण बुद्धाण०' नीचे बैठ कर 'नमुत्थुणं०' खड़े होकर 'अरिहंतचेइयाणं० अन्नत्थ०' एक नव कार का काउस्सग्ग कर, पार कर 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' बोल के नीचे की थुई कहना।

श्रुतदेवी जिनवाणी, भापक लोकाऽलोक।
जिनपति इम भाषे, देवे गणधर थोक॥
माली-अर्जुन पावा, दृढप्रहारी जाण।
तप वर आचरता, पाम्या पद निर्वाण॥ १॥

'लोगस्स०, सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं०, अन्नत्थ' एक नवकार का काउस्सग्ग कर, पार कर नीचे की थुई कहना।

सुविहित मुनि सूरि, वरिया पद महानन्द।
श्रीजे भव तप करी, पाया पद जिनचन्द॥
उग्रस्थपणे तप, करतां अतिशयवन्त।
केवल महा-भोगी, पूजे सुरगण-सन्त॥ २॥

'पुक्खरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ करमि काउस्सग्ग वंदणवत्तियाए० अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग कर, पार कर 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' नीचे की थुई कहना।

इम तपवर धारी, तस पटधर सुखकार ।
सिद्धान्ते भाख्या, दोय हजार ने चार ॥
पचम कलिकाले, युगप्रवर अवतार ।
सूरियतीन्द्र तो वन्दे, आणी भाव उदार ॥ ३ ॥

' सिद्धाण बुद्धाण० ' नीचे बैठ कर ' नमुत्थुण०, जावंति०, खमा०, जावत०, खमा०, नमोऽर्हत्सिद्धा०, उवसग्गहर० ' अथवा नीचे का स्तवन कहना ।

कर रे कर रे कर रे, श्रीजिनवद०, ए राह—

अक्षयनिधि–तप आदर रे, आदर आदर आदर रे ।
तप आदरी सपत्ति घर रे, अक्षयनिधि० ॥ टेर ॥

अज्ञान नाशक मिथ्या विनाशक,ज्ञान भानुतम-हर रे।
स्वपर प्रकाशक श्रीश्रुतज्ञान की, भक्ति कर भव तर रे
॥ अ० ॥ १ ॥

पाचों ज्ञान में श्रुत है मोटो, भाखे श्रीश्रुतधर र ।
श्रुत विन बोध न पामे चेतन, जिनश्रुत जग हितकर रे
॥ अ० ॥ २ ॥

ज्ञान आराधे सवि सुख साधे, लीला लहेर जस घर रे ।
ज्ञान की महिमा जग में भारी, भावे नमत चरण नर-
वर रे ॥ अ० ॥

जैनागम में ए तप भाख्यो, सद्गुरु माखे ऊचर रे।
आराधी सुंदरी सुख पाई, अक्षयनिधि सुखकर रे
॥ अ० ॥ ४ ॥

गुरुगम लही अक्षयनिधितप कर, अखूट खजानो भर रे।
सूरिराजेन्द्र यतीन्द्रसूरि का, नित नित उठी समर रे
॥ अ० ॥ ५ ॥

जय वीयराय 'आभवमखंडा' तक कह कर 'खमा० इच्छाकारेण०, चैत्यवंदन करु ? इच्छं' बोल कर नीचे का चैत्यवन्दन कहना।

तप करिये अक्षयनिधि, ऋद्धि-सिद्धि सुख हेत।
ज्ञान-भक्ति भवि आदरो, क्रिया विधान समेत ॥१॥

तपथी नवनिधि सपजे, तपथी होय कल्याण।
तपथी जग यश पामिये, तपथी लहो सुख त्राण ॥२॥

अखट सुख वर पामिये, अखड होय प्रताप।
आणा जग लोपे नहीं, टले भवो-भव पाप ॥ ३ ॥

मिथ्यातमने मेटवा, लेवा सम्पति पूर।
सूरियतीन्द्र अक्षयनिधि, तप करतां अघ दूर ॥ ४ ॥

'नमुत्थुणं०' बोल कर 'जय वीयराय०' सपूर्ण

करना। उपरोक्त उत्कृष्ट चैत्यवन्दन विधि किये बाद अक्षयनिधितप की पूजा नीचे मुताबिक भणाना।

ज्ञानपदपूजा। दोहा—

नवपद में पद सातमो, स्व-पर प्रकाशक ज्ञान।
आराधो भक्ति भाव से, हरो अनादि अज्ञान ॥१॥

ढाल १, स्वामी सीमधर उपदिशे०, ए राह—

नमिये भवि श्रुत नाणने, इण परभव सुखकारी रे।
ज्ञाने शिव सम्पति लहो, अक्षय सुख अविकारी रे
॥ न० ॥ १ ॥

अज्ञान अन्धता मेटवा, ज्ञानभानु जयवन्तो रे।
पण भेदसु शोभतो, जग में महिमावन्तो रे ॥न०२॥

मति आदि पण ज्ञान में, श्रुत स्व-पर ओलखाये रे।
ज्ञान अवरने जाणिये श्री श्रुतज्ञान प्रभावे रे ॥न०३॥

जिन-भाषित आगमतणो, अर्थ न लहे अज्ञाने रे।
ज्ञाने धर्मना मर्मने, ज्ञान गुणी पहिचाने रे ॥न० ४॥

---

१ प्रात काल प्रतिक्रमण मे एकासनादि का पचक्खाण न लिया हो, तो यहां पर पचक्खाण लेना और ले लिया हो, तो याद कर लेना चाहिये।

ज्ञानीजन जगमे वड़ो, राय राणा सहु नमता रे।
पूजा करो श्रुतज्ञाननी, पावो सुख मन गमता रे ॥न० ५॥

ज्ञानभक्ति करो शुद्ध मने, ज्ञान-अबोधता जावे रे।
ज्ञान ध्यान गुण संपजे, सूरियतीन्द्र स्वभावे रे ॥न०६॥

दोहा—

उपकारी शशि-रवि परे, हितकारी जिम मेह।
तिम मिथ्यातम भेदवा, नमो ज्ञान गुणगेह ॥ १ ॥

ढाल २, श्रीसीमधर साहिब आगे०, ए राह—

ज्ञानाधारे पान अपाननो, जाणे सकल विचार।
भक्ष्याऽभक्ष्य न जे विण जाणे, पामे न शुद्धाचार रे १

'प्राणी! ज्ञान जगत सुखकारी,
परमानन्द दातारी रे प्राणी ज्ञा०' ॥ टेर ॥

कृत्याऽकृत्य सविकल्प विकल्प, धर्माऽधर्मनो मर्म।
ज्ञान रहित जन ए नवि जाणे, ज्ञाने टले सहु भर्म रे प्रा०

ज्ञान विना धर्मश्रद्धा न प्रगटे, कज्ज अकज्ज न जाणे।
कुगुरु सुगुरु गुणी अगुणी सरखा, ज्ञान विना एक
ताणे रे प्रा० ॥ ३ ॥

अज्ञाने हेय ज्ञेय उपादेय, जाणे न षट्-द्रव्य भाव।
भेदाऽभेद विचार न होवे, ज्ञाननो प्रगट प्रभाव रे प्रा०४

ज्ञान आराधो न ज्ञान विराधो, साधो सुख अभिराम।
ज्ञान-भक्ति युक्ति मनरंगे, जिम लहो ध्रुव विश्राम रे
प्रा० ॥ ५ ॥

भूतिनगरना भव्य श्रद्धालु, अक्षयनिधि तप साधे।
यथाविधि किरिया चित चंगे, सम्यक्त्व ज्ञान आराधे
रे प्रा० ॥ ६ ॥

ज्ञान से सूरि यतीन्द्रपद पामे, घर-घर मंगल चार।
रस-नव-निधि-रूप-चातुर्मासे, वरत्या जय जय-
कार रे ॥ प्रा० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसुरासुरनरनाथसमहिताय परमात्मने नम'। अनन्तवस्तुप्रकाशकं प्रयत्नतराऽज्ञानमही ध्र-मेदक श्रीज्ञानपद कलशश्च श्रीरामचूर्णैर्यजामहे स्वाहा।"

यह मंत्र बोल कर वासक्षेप से ज्ञान की पूजा करना और नैवेद्य, चावल, धूप, दीप, रूपानाणा चढाना। बाद में कलश त्रिगड़ा के सामने खड़े रह कर हाथ जोड़ के प्रार्थना रूप से नीचे के पीठिका-दोहा बोलना।

सुखकर शंखेश्वर नमी, थुणस्युं श्रीश्रुत
चउ मूगा श्रुत एक है, स्व-पर

अभिलाप्य अनन्त मे, भागे रचिया जेह ।
गणधरदेवें प्रणमिया, आगम-रयण अछेह ॥२॥

इम बहुली वक्तव्यता, छ ठाणवडिया भाव ।
क्षमाश्रमण भाष्ये कह्या, गोपय सर्पि जमाव ॥३॥

लेश थकी श्रुत वरणवुं, भेद भला सम बीश ।
अक्षयनिधि तपना दिने, खमासमण ते वीश ॥४॥

सूत्र अनन्त अर्थे मयित, अक्षर अंश लहाय ।
श्रुतकेवली केवलिपरें, भाषे श्रुत परजाय ॥ ५ ॥

फिर खमासमण पूर्वक नीचे के दोहा बोलना और प्रत्येक दोहा के अन्त में प्रदक्षिणा देते हुए " " इस ब्राकेटवाला दोहा बोलना ।

इगसय अडवीस स्वरतणा, तिहाँ अकार अ...
श्रुत-पर्याय समा... अग ... ७५ विच...
" ... नने
पूजन अर्चन ... ाज

बत्तीस वर्ण ... ।
जे मांहि इक ...

क्षयोपशम भा...
... ठाणांग ...

कोडि एकावन आठ लख, अडसय इकासि हजार।
चालीस अक्षर पद तणा, कहे अनुयोग दुवार ॥ ४ ॥

अर्थान्ते यहाँ पद कह्यु, जिहाँ अधिकार ठराय।
ते पद श्रुतमे प्रणमता, ज्ञानावरणि हठाय ॥ ५ ॥

अढार हजार पदे करी, अंग प्रथम सुविलास।
दुगुणा श्रुत बहुपद ग्रहे, चरण तें श्रुत समास ॥६॥

पिंडप्रकृतिमा इक पदे, जाणे बहु अवदात।
क्षयोपशमनी विचित्रता, तेहज श्रुत संघात ॥ ७ ॥

पयोत्तर भेदे करी, स्थितियन्त्रादि निवास।
कम्मपयडी पयडी ग्रहे, श्रुत संघात समास ॥ ८ ॥

गत्यादिक जे मार्गणा, जाणे तेहमा एक।
विवरण गुणठाणादिके, तस प्रतिपत्ति विवेक ॥ ९ ॥

मार्गणा पद बामठे, लेश्या आदि निवास।
संग्रह तरतम योगसे, ते प्रतिपत्ति समास ॥ १० ॥

सतपदादिक द्वार में, जे जाणे शिव-लोग।
एक दोय द्वारें करी, श्रद्धा श्रुत अनुयोग ॥ ११ ॥

वली सतादिक नव पदे, तिहाँ मार्गणा भास।
सिद्धतणी स्तवना करे, श्रुत अनुयोग समास

प्राभृत-प्राभृत श्रुत नमु, पूरवना अधिकार ।
बुद्धि प्रबल प्रभाव से, जाणे इक अधिकार ॥ १३ ॥

प्राभृत-प्राभृत श्रुत समा, साभिघ लब्धि विशेष ।
बहु अधिकार इस्या ग्रहे, क्षीराश्रव उपदेश ॥ १४ ॥

पूरव गत वस्तु जिके, प्राभृत-श्रुत ते नाम ।
एक प्राभृत जाणे मुनि, तास करु परणाम ॥ १५ ॥

पूरव लब्धि प्रभाव से, प्राभृत-श्रुत सुसमास ।
अधिकार बहुला ग्रहे, पदानुसार विलास ॥ १६ ॥

आचारादिक नाम से, वस्तु नाम श्रुत सार ।
अर्थ नाना-विध सग्रहे, ते पण इक अधिकार ॥ १७ ॥

युगमय पणविस वस्तु है, चौद पूर्वनी सार ।
जाणे तिणने वन्दना, इक श्वासे सो वार ॥ १८ ॥

उत्पादादिक पूर्व जे, सूत्र अर्थ इक सार ।
विद्या मन्त्र तणो कह्यो, पूरव श्रुत भंडार ॥ १९ ॥

बिन्दुसार लग जे भणे, तेहज पूर्व समास ।
श्रीशुभ वीरना शासने, होजो ज्ञान प्रकाश ॥ २० ॥

प्रदक्षिणा पूर्ण होने बाद तप-कारक सभी श्रावक श्राविकाओं को हाथ की अंजली में चावल भर कर और उसके उपर यथाशक्ति नाणा रख कर-

सद्ज्ञान-नीर अगाध मे नित, विश्व में है जो यथा।
पदरचनाऽमल-पंक्तियों मे, लहर लेता है सदा॥
सच्चूलिका-मणिरत्न जिसमे, पूरित अपरम्पार है।
दुर्लंघ्य आगम अम्बुनिधि को, नमन वारम्बार है॥१॥
ज्ञानवसु सम धन है न जग मे, आश जीवित सम नहीं
समता सम सौख्य है न कोई, लोभ सा दुःख है नहीं॥
अतएव विभुवर! दीजिये अब, ज्ञानधन शम सुख बढ़े।
है आश यह न निराश करिये, शरण में हम आ पड़े॥

ॐ ह्रीं नमोऽर्हते परमात्मने श्रीअक्षयज्ञानपदाराधनाय मोक्षमाञ्जलिभिः कलशं परिपूजयामि स्वाहा।

ऐसा बोल कर अंजली-भूत चावल कलश में डाल कर, उसका मुख बांध कर आरति उतारना।

इस तप के दिनों मे प्रतिदिन प्रातःकाल १० या ११ बजे उपरोक्त विधि करना, प्रातःकाल प्रतिक्रमण करके जिनालय मे पूजा किये बाद और सन्ध्या को दैवसिक-प्रतिक्रमण के पहले छः थुई से उत्कृष्ट देव वन्दन क्रिया करना। एकासणा किये बाद पोसहविधि में [illegible] ... [illegible] और

सन्ध्या का प्रतिक्रमण करके सोते समय संथारापोरिसी भी भणा ली जाय तो अच्छा ही है। शमिति।

अक्षयनिधितप-चैत्यवन्दनम्।

चौद सहस्र मुनिना धणी, शासनपति सुखकार।
चौसठ सुरपति सेवता, जिनशासन जयकार ॥१॥

श्रीजिनवाणी साभळी, लहे त्रिपदी गणधार।
जिन-आगम रचना करे, जगजनने हितकार ॥२॥

श्रुत में बहुविध भाषिया, तप प्रभाव विस्तार।
आराधे चउ संघ जे, थावा भवजल पार ॥ ३ ॥

तपश्रेणी माँहें कह्यु, अक्षयनिधि तप सार।
सकल सिद्धि हेते करे, पुण्यवन्त नर-नार ॥ ४ ॥

सविधि तप आराधिये, श्रुत भक्ति श्रीकार।
जिनपूजा वन्दन कर, आवश्यक दो वार ॥ ५ ॥

पाले शील स्वभाव से, वरते शुद्धाचार।
श्रीश्रुतनी ऊपासना, गुणणो दोय हजार ॥ ६ ॥

[illegible]जिनेन्द्र आगमे, भाख्यो सकल विचार।
रि[illegible] सुसग से, करे सफल अवतार ॥ ७ ॥

अक्षयनिधितप–स्तुतिः ।

अक्षय शिवसुख संपति कारण,
अक्षयनिधि तप साधो जी ।
श्रीजिनवाणी हृदये आणी,
श्रीश्रुतज्ञान आराधो जी ॥
विधि मनशुद्धे तप आदरने,
पूरण जग जस पावो जी ।
इह–भव पर–भव ऋद्धि वृद्धि,
अन्ते मोक्ष सिधावो जी ॥ १ ॥

भाद्रवदि तिथि चतुरथी दिनथी,
ए तप आरम्भ कीजे जी ।
एकासण तपस्या दिन–पंदर,
चोथ चउ भक्त पचक्खीजे जी ॥
उभयकाल आवश्यक वंदन,
जिनपूजन त्रिहुं काले जी ।
ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स ए पदनो,
गुणणो गिण अघ टालो जी ॥ २ ॥

काउस्सग्ग वीश लोगस्स–एकावन,
स्वस्तिक करी चित्त चंगे जी ।

सरीरसक्कारपोसहं सव्वओ, बमचेरपोसह सव्वओ, अव्वावार पोसहं सव्वओ, चउव्विह पोसह ठामि, जाव दिवस पज्जुवासामि, दुविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण, न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । "

' गुरु का योग न होय तो वडिल पौषधवाले श्रावक के मुख से या स्वय उच्चरे । फिर ' खमा०, इच्छाकारेण० सामायिक लेवा मुहपत्ति पडिलेहु ?, इच्छ ' कह कर मुहपत्ति की पडिलेहन करके 'खमा० इच्छाकारेण० सामायिक सदिसाऊ ? इच्छ । खमा० इच्छाकारेण० सामायिक ठाऊ ? इच्छ' कह कर, नवकार गिन कर 'इच्छाकारी भगवन् ! पसाय करी सामायिक-दडक उचरावोजी ?' बोल के 'करेमि भंते सामाइय' का पाठ उचरना । यहाँ इतना विशेष है कि 'जाव नियमं' के स्थान पर ' जाव पोसह ' कहना । बाद में इरियावहि पडिक्कम कर 'खमा० इच्छाकारेण० बेसणे सदिसाऊ ?, इच्छ । खमा० इच्छाकारेण० बेसणे ठाऊ ? इच्छ । खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय सदिसाऊ ?, इच्छ । खमा इच्छाकारेण० सज्झाय करु ? इच्छ ' कह कर तीन नवकार गिनना । फिर " खमा० इच्छाकारेण० कुसुमिण-दुसुमिण-उड्डावणी राइय पायच्छित्तविसोहणत्थ काउस्सग्ग करु ?, इच्छ कुसुमिण-दुसुमिण-उड्डावणी-राइयपायच्छिच-विसोहणत्थ करेमि काउस्सग्ग, अन्नत्थ०" कह कर चार लोगस्स या सोलह नवकार

का काउस्सग्ग करना। बाद राइप्रतिक्रमण की विधि से राइय-प्रतिक्रमण करना। इतना विशेष कि–' सात लाख ' तथा 'अढार पापस्थानक' के जगह 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! गमणागमणे आलोऊं ? इच्छ ' बोल कर—

" इरियासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भंडमत्तनिक्खेवणासमिति, पारिट्ठावणियासमिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ए पांच समिति त्रण गुप्ति अष्ट प्रवचन-माता श्रावकतणे धर्मे सामायिक पोसह लीधे रूडीपरे पाली नहीं, खंडनविराधना हुई होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड" कहना। आखिर खमा० इच्छाकारेण० बहुवेल संदिसाउं ? इच्छ, खमा० इच्छाकारेण० बहुवेल करशुं ? इच्छ ' कह कर भगवानादि वंदन कर के ' अड्ढाइज्जेसु ' कह कर सिद्धाचल देववंदन तक विधि करना।

पडिलेहण करने की विधि—

इरियावहि० करके ' खमा० इच्छाकारेण० पडिलेहन करुं ?, इच्छ ' कहके मुहपत्ति पडिलेहन करना। फिर अनुक्रम से चरवला, डंडासण, धोती, उत्तरासंग और कटासणा की पडिलेहन करके ' खमा० इच्छाकारी भगवन् ! पसाय करी पडिलेहण पडिलेहावो ? ' कहके स्थापनाचार्य, या ज्ञानोपकरण की पडिलेहन करना। बाद में ' खमा० इच्छा-कारेण० उपधि मुहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छ,' बोल कर

पडिलेहन करना। फिर 'खमा० इच्छाकारेण० उपधि सदिसाऊ ? इच्छं। खमा० इच्छाकारेण० उपधी पडिलेहु ?, इच्छं' कह कर बाकी रहे हुए वस्त्रों की पडिलेहन करना। फिर उपयोग से धीरे धीरे डंडासण या चरवला से वापरवा योग्य जगह का कचरा भेला कर, उसको पाटी या सूपड़ी में ले कर निर्जीव स्थान पर 'अणुजाणह जस्सग्गो' कह के परठ कर, तीन वार 'वोसिरइ' कह के स्थापनाचार्य या गुरु के पास आ कर इरियावहि[१] करके गमणागमणे कहना।

फिर उत्तरासण कर कटासणा शिर या स्कंध पर रख, चरवला बगल में और मुहपत्ति हाथ में रख कर जयणा से जिनमन्दिर जाना। वहाँ पर नीचे मुताबिक उत्कृष्ट देववन्दन-विधि से चैत्यवन्दन करना।

उत्कृष्ट देववदनविधि—

एक खमासमण देकर 'इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि ?, इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए०, तस्स उत्तरी०, अन्नत्थ०' एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग पार कर, लोगस्स कहना। तीन खमासमण देकर 'इच्छाकारेण० चैइयवंदण करु ? इच्छं' कह कर चैत्यवन्दन कहना। फिर नमुत्थुणं० बोल के जय वीय-

१ श्राद्धविधि-टीका, विधिप्रपा आदि जैन ग्रन्थों में कचरा परठने बाद ही 'इरियावहि' पडिक्कमना लिखा है।

ाय आमत्रमखडा तक बोलना। बाद में एक खमासमण :कर 'इच्छाकारेण० चैत्यवन्दन करु ?, इच्छ ' कह के ैत्यवन्दन, 'नमुत्थुण०' खड़ होकर 'अरिहतचेइयाण०, अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग, पार कर नमोर्हं० ाथम थुई कहना। फिर 'लोगस्स०, सवलोए अरिहतचेइया०' अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग पार के दूसरी थुई कहना। फिर 'पुक्खरवरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग वदणवत्तियाए० अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग पार के 'नमोऽर्हत्सि०' तीसरी थुई कहना। सिद्धाण बुद्धाणं० बोलके, नीचे बैठ के 'नमुत्थुणं०' खड़े होकर 'अरिहतचेइयाण०, अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग, पार के 'नमोर्हत्सि०' पहली थुई कहना। लोगस्स०, सवलोए अरिहतचेइ०, अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग, पार के दूसरी थुई कहना। पुक्खरवरदी०, सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग वदणवत्तियाए० अन्नत्थ०' एक नवकार का काउस्सग्ग, पार के नमोऽर्हत्सि०' तीसरी थुई कहना। 'सिद्धाण बुद्धाण०' नीचे बैठ कर 'नमुत्थुण०, जावति०, खमा० जावत०, नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः, इच्छाकारेण सदिसह भगवन्! स्तवन भणु? इच्छ' उवसग्गहर अथवा कोई भी स्तवन कह कर जय वीयराय० आभवमखंडा तक कहना। फिर 'खमा० इच्छाकारेण० चेइयवदण करु? इच्छ', कह कर चैत्यवन्दन० नमुत्थुण० बोल के 'जय वीयराय',

पौषधशाला में आ कर, इरियावहि पडिकमण कर, इरियासमिति भाषासमिति० पाठ से गमणागमणे आलोय कर 'विधि करता अविधि आशातना हुई होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड' बोलना। फिर 'खमा०, इच्छाकारेण० सज्झाय संदिसाऊ ?, इच्छ। खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय करु ? इच्छ ' कह कर, उमड़क आसन से एक नवकार गिन कर नीचे की सज्झाय बोलना।

मण्ह जिणाणमाण, मिच्छ परिहर धरह सम्मत्त।
छव्विह आवस्सयम्मि, उज्जुत्तो होइ पइदिवस ॥ १ ॥
पव्वेसु पोसहवय, दाण सील तवो अ भावो अ।
सज्झाय-नमुक्कारो, परोवयारो य जयणा य ॥ २ ॥
जिणपूआजिणथुणण, गुरुथुअसाहम्मियाण वच्छल्ल।
ववहारस्सय सुद्धी, रहजत्ता-तित्थजत्ता य ॥ ३ ॥
उवसमविवेगसंवर, भासासमिइ छजीवकरुणा य।
धम्मियजणसंसग्गो, करणदमो चरणपरिणामो ॥ ४ ॥
संघोवरि बहुमाणो, पुत्थयलिहणं पभावणा तित्थे।
सड्ढाण किच्चमेय, निच्च सुगुरुवएसेण ॥ ५ ॥

पोरिसि-मुहपत्तिपडिलेहण-विधि—

छः घड़ी (एक प्रहर) दिन चढ़ने पर इरियावहि पडिक्कम कर 'खमा०, इच्छाकारेण०, बहुपडिपुन्ना पोरिसि

मुहपत्ति पडिलेहुजी ?' इच्छ' कह कर मुहपत्ति की पडिलेहन करना। प्रातःकाल में पचक्खाण न लिया हो और गुरु का योग हो तो द्वादशावर्त्तवंदनविधि से वन्दना कर के 'इच्छाकारी भगवन् ! पसाय करी पचक्खाण करावोजी !' ऐसा कह कर उपवास, आयबिल, निवि या एकासणा का पचक्खाण लेना। गुरु का योग न होय तो खुद पचक्खाण का पाठ बोलना। एकासणा से कम पचक्खाण में पौषध नहीं हो सकता, उपधानादि मोटे तप की बात जुदी है। राइपडिक्कमण में पचक्खाण ले लिया हो तो यहाँ फिर लेने की आवश्यकता नहीं है। याद कर लेना चाहिये।

पौषध में लघुशंका (पेशाब) करने को जाना पड़े तो कपड़ा बदल कर मातरिया में मात्रा कर के निर्जीव भूमि पर 'अणुजाणह जस्सग्गो' बोल कर परठना और फिर तीन बार 'वोसिरइ' कहना। बाद गरम जल से मातरिया और हाथ को धो कर स्थापनाचार्य के पास खमासमण दे कर इरियावहि पडिकम कर 'गमणागमणे' का पाठ कहना।

पचक्खाण-पारने की विधि—

मध्याह्न काल में स्थापनाचार्य या गुरु के सामने उत्कृष्ट-देववदनविधि से देव वांदना। चोविहार उपवास न हो तो 'खमा० इरियावहि०, तस्स उत्तरी०, अन्नत्थ०' एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग कर, पार कर

कहना। फिर खमासमण दे कर 'इच्छाकारेण० चैत्यवंदन करु ? इच्छं' कह कर 'जगचिंतामणि०, नमुत्थुण, जावंति०, खमा०, जावंत०, खमा०, नमोऽर्हत्सि०, उवसग्गहरं०, जयवीयराय०' बोल कर खमासमण पूर्वक आदेश ले कर और नवकार गिन कर 'मन्ह जिणाणं' की सज्झाय कहना। फिर 'इच्छाकारेण० पच्चक्खाण पारवा मुहपत्ति पडिलेहुं जी ?' कह के मुहपत्ति पडिलेह कर, मुट्ठी मीच कर नीचे का पाठ बोलना।

"सूरे उग्गए उपवास कर्यो तिविहार, पोरिसि, साढपोरिसि पुरिमड्ढमुट्ठिसहिय पच्चक्खाण कर्युं पाणाहार-पच्चक्खाण फासिय पालिय सोहिय तीरिय किट्टिय आराहियं जं च न आराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कड।"

आयंबिल, नीविगइ या एकासणा किया हो तो उपवास के स्थान पर आयंबिल आदि का नाम लेना और पोरिसि आदि में 'पच्चक्खाण कर्युं चोविहार' कहना। एकासणा आदि अपने घर करने को जाना हो तो कटासणा, मुहपत्ति, चरवला और पुस्तक साथ में ले कर घर जाना। वहाँ एक तरफ शुद्ध जगह पर ऊंचे आसनपे पुस्तक रख कर, उसके सामने इरियावहि पडिक्कम कर, गमणागमणे का पाठ कह कर, कटासण पर बैठ कर, खप पूरता भोजन करना, एठा डालना नहीं, थाली धोकर पी लेना। अगर पूर्व-प्रेरित पुत्रादिक पौषधशाला, उपाश्रय या जहाँ पोसह लिया हो वहाँ पर ही आहार

ले आवे तो इरियावहि करके कटासणा पर बैठ कर, स्वप रता भोजन आरोग कर हाथ-मुख की शुद्धि कर लेना।

पचक्खाण-सवरने के विधि—

स्थापनाचार्य के सन्मुख आ कर कटासणा बिछा कर, इरियावहि पडिक्कम कर और गमणागमणे कह कर 'खमा०, इच्छाकारेण० चैत्यवदन० करु?' कह के 'मकलकुशलवल्ली०' का चैत्यवदन बोल कर 'ज किंचि नाम०, नमुत्थुण० जावंति०, खमा० जावंत०, खमा० इच्छाकारेण०, स्तवन भणु? इच्छ, नमोऽर्हत्सिद्धा०, उवसग्गहर०, जय वीयराय०' कहना। फिर दो घड़ी दिवस बाकी रहने तक तीन चार बार जल-पान करना, शेष आहार करने का त्याग करना।

पोसह में स्थंडिल (जगल) जाना पड़े तो कपड़ा बदल, मुहपत्ति केड़ मे रख, चरवला बगल में रख, काल का समय हो तो कम्बल ओढ़ और लोटा में गरम जल लेकर गाँव के बाहर निर्दोष भूमि पर 'अणुजाणह जस्सग्गो' कह कर जगल जाना। शौच करके उठते समय मन मे तीन बार 'वोसिरइ' कह कर उठना। फिर पौषधशाला मे 'निसीहि' तीन बार कहते हुए आ कर लोटा, हाथ, पैर, गरम जल से धोकर, कपड़ा बदल कर स्थापना के सामने इरियावहि पडिक्कम कर 'गमणागमणे' का पाठ बोलना। पौषधशाला से जाते 'आवस्सहि' और आते समय 'निसीहि' तीन बार अवश्य बोलना ~

संध्या-पडिलेहण-विधि—

तीसरे प्रहर के बाद स्थापनाचार्य के पास इरियावहि पडिकम कर 'खमा० इच्छाकारेण०, गमणागमणे आलोउं? इच्छ, इरियासमिति०, खमा० इच्छाकारेण० पडिलेहण करु? इच्छ, खमा० इच्छाकारेण०, पोसहसाला प्रमार्जुं? इच्छ' कह कर मुहपत्ति पडिलेहना। फिर चरवला, धोती, उत्तरासण की पडिलेहन करके 'खमा० इच्छकारी भगवन्! पसाय करी पडिलेहण पडिलेहावोजी' कह कर स्थापनाचार्य या ज्ञानोपकरण की पडिलेहण करना। फिर खमा० इच्छाकारेण० संदिसह भगवन्! उपधि मुहपत्ति पडिलेहु? इच्छ' कह के मुहपत्ति की पडिलेहण करके 'खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय संदिसाउ? इच्छ, खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय करु? इच्छ' कह कर, एक नवकार गिन कर उभडूक आसन से 'मण्ह जिणाण' की सज्झाय बोल कर एक नवकार कहना। फिर 'खमा० इच्छाकारेण० उपधि संदिसाउ? इच्छ, खमा० इच्छाकारेण० उपधि पडिलेहु? इच्छ' कह कर बाकी रहे हुए वस्त्रों की जयणा से पडिलेहण करना।

खाया हो तो वांदणा देकर और तिविहार उपवास किया हो तो 'इच्छाकारी भगवन्! पसाय करी पचक्खाण आपोजी?' कह कर पाणाहार दिवसचरिम का पचक्खाण लेना। चोविहार उपवासवालों को पचक्खाण लेने की जरूरत नहीं

है, परन्तु प्रातःकाल में तिविहाहारोपवास का पच्चक्खाण लिया हो फिर जलपान न किया हो या न करना हो, तो यहाँ चोविहार उपवास का पच्चक्खाण ले लेना चाहिये।

बाद में दंडासन की पडिलेहन करके कचरा निकालना और उसको मैला कर, शोध कर, जीव रहित जमीन के ऊपर निग्वरता हुआ 'अणुजाणह जस्सग्गो' कह कर, जयणा से परठना। बाद स्थापनाचार्य के पास इरियावहि कर गमणागमणे आलोचना। फिर उत्कृष्ट द्वादशावर्तविधि से देव वांदना और फिर देवसिय या पाक्षिकादि प्रतिक्रमण करना। उसमें सात लाख, अठार पापस्थानक के बदले 'इरियासमिति भाषासमिति०' और करेमि भंते! में सर्वत्र ' जाव नियम ' के बदले ' जाव पोसह ' कहना।

पोसह पारने की विधि—

प्रतिक्रमणक्रिया पूर्ण होने बाद ' खमा०, इरियावहि०, तस्स उत्तरी०, एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग पार कर 'लोगस्स०' कहना। फिर 'चउक्कसाय०, नमुत्थुणं, जावंति० खमा० जावंत०, खमा० इच्छाकारेण० स्तवन भणु? इच्छं, नमोऽर्ह०, उवस्सग्गहरं०, जय वीयराय०' कह कर 'खमा० इच्छाकारेण० पोसह पारवा मुहपत्ति पडिलेहुं? इच्छं ' मुहपत्ति पडिलेह कर, 'खमा०

पारु ?, 'यथाशक्ति' खमा० इच्छाकारेण० पोसह पार्युं ? 'तहत्ति' चरवला पर जिमना हाथ रख कर, एक नवकार गिन कर, नीचे का पाठ कहना।

" सागरचंदो कामो, चंदवडिंसो सुदंसणो धन्नो।
जेसिं पोसहपडिमा, अखंडिया जीवियंते वि ॥ १ ॥

धन्ना सलाहणिज्जा, सुलसा आणंद-कामदेवा य।
जास पसंसइ भयवं, दढव्वयत्तं महावीरो ॥ २ ॥"

पोसह विधें लीधो, विधें पार्यो, विधि करता जे कांई अविधि हुई होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड। पोसहना अढार दोष माहे जे कोई दोष लाग्यो होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड।"

बाद मे 'खमा०, इच्छाकारेण०, सामायिक पारवा मुहपत्ति पडिलेहु ? इच्छं' मुहपत्ति पडिलेह कर, खमा०, इच्छाकारेण०, सामायिक पारु ? 'यथाशक्ति' खमा० इच्छाकारेण०, सामायिक पार्युं ? 'तहत्ति' चरवला पर जिमना हाथ रख, एक नवकार गिनके—

सामाइयवयजुत्तो, जाव मणे होइ नियमसंजुत्तो।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥ १ ॥

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥

सामायिक विधें लीधु विधें पायुं, विधि करता जे कोई अविधि हुओ होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड । दश मनना, दश वचनना, बार कायाना ए बत्रीस दोष माह जे कोई दोष लाग्यो होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ करी मिच्छामि दुक्कड ।"

दिवस का पौषध लिये बाद यदि रात्रि-पौषध करने का भाव हो जाय तो सन्ध्या के समय पडिलेहन करके, इरियावहि पडिकम कर और गमणागमण आलोय कर पोसह लेने की विधि से पोसहदंडक उचरना परन्तु 'जाव दिवस' के स्थान पर 'जाव सेसदिवस रत्त' कहना । प्रातःकाल में जिनपूजा करके पोसह लेना हो तो सुबह जल्दी उठ कर राइयपडिक्कमण करके पडिलेहन कर सामायिक पार, गरम-जल से स्नान कर जिनपूजा करना । फिर पौषधशाला में आ कर 'दैवसिक-पौषधविधि' से पोसह लेकर सज्झाय का आदेश ले, तीन नवकार गिन कर खमासमण पूर्वक बहुवेल संदिसाऊ, बहुवेल करसु' कह कर उत्कृष्ट देववंदनविधि से देव वांदना चाहिये ।

रात्रिक-पौषधविधि—

छः या चार घड़ी दिन रहते दैवसिक-पौषध में लिखे गये उपकरण, दंडासण, चूना डाला हुआ गरम जल का भाजन, बिछाने और ओढ़ने के लिये कम्बल ले कर पौषध-

" आगाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अणहियासे । आगाढे आसन्ने पासवणे अणहियासे । आगाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे । आगाढे मज्झे पासवणे अणहियासे । आगाढे दूरे उच्चारे पासवणे अणहियासे । आगाढे दूरे पासवणे अणहियासे । "

" आगाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अहियासे । आगाढे आसन्ने पासवणे अहियासे । आगाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अहियासे । आगाढे मज्झे पासवणे अहियासे । आगाढे दूरे उच्चारे पासवणे अहियासे । आगाढे दूरे पासवणे अहियासे ।"

" अणागाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अणहियासे । अणागाढे आसन्ने पासवण अणहियासे । अणागाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे । अणागाढे मज्झे पासवणे अणहियासे । अणागाढे दूरे उच्चार पासवणे अणहियासे । अणागाढे दूरे पासवणे अणहियासे । "

" अणागाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अहियासे । अणागाढे आसन्ने पासवणे अहियासे । अणागाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अहियासे । अणागाढे मज्झे पासवणे [illegible] । अणा-

१ गाढ कारण में । २ नजीक में । ४
लघुनीत । ५ सहन न हो सके तो । ६ । ८
[illegible]हन हो सके तो । ९ गाढ कारण न

गाढे दूरे उच्चारे पासवणे अहियासे । अणागाढे दूरे पासवणे अहियासे' । "

बाद में दैवसिक प्रतिक्रमण करना, उसमें सात लाख और अढार पापस्थानक की जगह ' इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! गमणागमणे आलोउं ? ' कह के ' इरियासमिति भाषासमिति० ' कहना । करेमि भंते में भी सर्वत्र ' जाव नियम ' के स्थान पर ' जाव पोसह ' कहना ।

संथारा-पोरिसि भणाने की विधि—

एक प्रहर रात्रि जाय तब मात्रा की शंका टाल कर भूमि प्रमार्जन करके कटासणा बिछा कर स्थापना के सामने 'खमा० इच्छाकारेण० बहुपडिपुन्ना राइयसंथारा पोरिसि भणावणत्थं इरियावहि पडिक्कमुं ? इच्छं' कह कर, इरियावहि पडिक्कम कर 'खमा० इच्छाकारेण०, बहुपडिपुन्ना पोरिसि राइयसंथारए ठाउं ? इच्छं, ' ठाइशुं ' कह के ' चउक्कसाय०, नमुत्थुणं०, जावंति०, खमा० जावंत०, खमा० इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! स्तवन भणुं ? इच्छं, नमोऽर्हत्०, उवसग्गहरं०, जय वीयराय० ' कह कर ' खमा०, इच्छाकारेण० संथारापोरिसि

---

१ पौषध में शयन के पास प्रथम, उससे कुछ दूर द्वितीय, उपाश्रय के बाहर तृतीय और उससे सो हाथ दूर चतुर्थ मांडला कहना चाहिये । वर्त्तमान में उस जगह को पहले तपाम के स्थापना के पास कहने की प्रवृत्ति है ।

भणावना मुहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छं ' मुहपत्ति पडिलेह कर नवकार पूर्वक तीन वार ' निसीहि निसीहि निसीहि नमो खमासमणाण गोयमाइण महामुणीणं ' बोल कर 'करेमि भंते' बोलना । फिर ' अणुजाणह जिट्ठिज्जा ' कह कर नीचे मुताबिक पाठ कहना—

अणुजाणह परमगुरु !, गुरुगुणरयणेहिं मंडियसरीरा ! बहुपडिपुन्नापोरिसि, राइयसंथारए ठामि ॥ १ ॥ अणुजाणह संथार, बाहुवहाणेण वामपासेण। कुक्कुडिपायपसारण, अतरंतपमज्जए भूमिं ॥ २ ॥ संकोइअ संडासा, उव्वट्टंते अ कायपडिलेहा । दव्वाइ उवओगं, ऊसासनिरुंभणा लोए ॥ ३ ॥ जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ रयणीए। आहारमुवहिदेहं, सव्वं तिविहेण वोसिरियं ॥ ४ ॥ चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ॥ ५ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमो, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥ ६ ॥ चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥७॥ पाणाइवायमलियं, चोरिक्कं मेहुणं दविणमुच्छं । कोहं माणं मायं, लोभं पिज्जं तहा दोसं ॥ ८ ॥ कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं रइ-अरइ समाउत्तं । परपरिवायं मायामोसं मिच्छत्तसल्लं च ॥ ९ ॥ वोसिरिसु इमाइं, मुक्खमग्गसंसग्गविग्घभूआइं । दुग्गइनिबंधणाइं, अट्ठारसपावठाणाइं

॥ १० ॥ एगोह नत्थि मे कोई, नाहमन्नस्स कस्सइ । एव अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासइ ॥ ११ ॥ एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ। सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा ॥ १२ ॥ सजोगमूला जीवेण, पत्ता दुक्खपरपरा। तम्हा सजोगसबध, सव्व तिविहेण वोसिरिय ॥ १३ ॥ अरिहतो महदेवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो। जिणपन्नत्त तत्त, इअ सम्मत्त मए गहिय ॥ १४ ॥ खमियखमाविअ, मइ खमह सव्वह जीवनिकाय। सिद्धह साख आलोयणह, मुज्झह वइर न भाव ॥ १५ ॥ सव्वे जीवा कम्मवस, चउदहराजभमत। ते मे सव्व खमाविआ, मुज्झ वि तेह खमत ॥ १६ ॥ ज ज मणेण बद्ध, ज ज वाएण भासिय पाव। ज ज काएण कय, मिच्छामि दुक्कड तस्स ॥ १७ ॥

फिर जमीन पूज कर, कम्बल बिछा, ऊपर उत्तरासग बिछा कर, मुहपत्ति कटी में खुरस कर और चरवला पडखे रख कर, कपडे बदल के नवकार गिनते हुए सो जाना। रात्रि मे पेशाब या स्थडिल की बाधा टालने को जाना पड़े तो कम्बल ओढ कर डडासण से जमीन पूजते हुए देवसिक पोसह मे लिखी विधि क अनुसार जाना और विधि करना।

सो कर उठने बाद की क्रिया—

पिछली रात्रि मे चार बजे उठ कर, मात्रा की टाल कर, इरियावहि पडिक्कम कर और

काउस्सग्ग कर, राइपडिक्कमण करना। उसमे विशाललोचन-दल के बाद तीन थुई से देव वाद कर 'खमा० इच्छाकारेण०, बहुवेल सदिसाउं ? इच्छ, खमा० इच्छाकारेण०, बहुवेल करइयु ? इच्छ' कह कर भगवानादि वदन कर, अड्ढाइज्जेसु० कह कर सिद्धाचल के देववदन तक विधि करना। फिर पडिलेहण की मुहपत्ति पडिलेह कर चरवला, कडासण, धोती, उत्तरासग की प्रतिलेखना करके 'खमा० इच्छाकारि भगवन्! पसाय करी पडिलेहण पडिलेहावो ? इच्छ' कह के स्थापना या ज्ञान की पडिलेहण करके 'खमा० इच्छाकारेण० उपधि मुहपत्ति पडिलेहु ? इच्छ' कह कर मुहपत्ति पडिलेह कर बाकी के सर्व वस्त्रों की पडिलेहण करना।

बाद मे कडासणा से कचरा निकाल, उस परठ कर, थापना के सामने इरियावहि करके, गमणागमणे का पाठ बोलना। फिर जिनमन्दिर आकर उत्कृष्ट देववदनविधि से देव वादना। फिर पौषधशाला मे आकर इरियावहि कर, इरिया-समिति० बोल कर, 'खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय सदि-साउ ? इच्छं, खमा० इच्छाकारेण०, सज्झाय करु ? इच्छ' कह के नवकार पूर्वक 'मण्ह जिणाण' सज्झाय बोल कर एक नवकार गिन के पोसह तथा सामायिक पारने की विधि से पोसह-सामायिक पारना।

आठ प्रहर या चौसठ प्रहर का पौषध करना हो तो देव-

मिक पौषधविधि में पोसह लेने की विधि प्रमाणे पोसह लेना परन्तु करेमि भंते में ' जाव नियम ' के स्थान पर ' जाव अहोरत्त ' अथवा जाव चउसठी पहरपर्यन्त ' कहना । शेष दिनरात्रि की विधि ऊपर मुताबिक ही करना और धर्मध्यान में वरतना चाहिये ।

दिशावकासिक लेने की विधि—

दिशावकासिक करनेवाले को पोसहसाला में सामायिक योग्य कपड़े पहिन कर, कटासणा बिछा कर, चरवला मुह-पत्ति लेकर, बैठ कर द्रव्य से दिशावकासिक में नियम उप-रान्त वस्त्रादि न वापरु, २ क्षेत्र में नियम उपरान्त भूमि में नहीं जाउ, ३ काल में दिशावकासिक की टाईम पूरी किये बिना नहीं जाउ और ४ भाव में यथाशक्ति मन को चल-विचल नहीं होने दू, सावद्य वचन, व्यापार या अकारण काय सचालन नहीं करु। इस प्रकार अभिग्रह धारण करके इरिया-वहि पडिक्कम के ' खमा० इच्छाकारण० मुहपत्ति पडिलेहू ? इच्छ, कह कर मुहपत्ति पडिलेहना । फिर ' खमा० इच्छा-कारेण०, दिसावगासिय सदिसाउ ? इच्छ, खमा० इच्छा-कारेण० दिसावगासिय ठाउ ? इच्छ ' एक नवकार गिन के 'इच्छाकारी भगवन् ! पसाय करी दिसावगासियदंडक उच्चरावोजी ? इच्छ ' बोल कर गुरुमुख से उच्चरे या स्वयं नीचे का पाठ उच्चारण करे—

" अहन्न भंते ! तुम्हाण समीवे दिसावगासिय पच्चक्खामि। दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं दिसावगासिय। खित्तओणं इत्थ वा अन्नत्थ वा। कालओणं जाव दिह वा। भावओणं छलेणं न छलिज्जामि, जाव सन्निवाएण न भविज्जामि। दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं, न करेमि, न कारवेमि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।"

बाद में 'खमा० इच्छाकारेण० सामायिक लेवा मुहपत्ति पडिलेहुं? इच्छं' कह कर, मुहपत्ति पडिलेह कर 'खमा० इच्छाकारेण० सामायिक संदिसाउं? इच्छं, खमा० इच्छाकारेण० सामायिक ठाउं? इच्छं' बोल कर, एक नवकार गिन कर सामायिक की करेमि भंते उच्चरना, उसमें 'जाव नियम' के स्थान पर 'जाव दिसावगासिय' कहना। फिर इरियावहि पडिक्कम कर, 'खमा० इच्छाकारेण बेसणे संदिसाउं? इच्छं, खमा० इच्छाकारेण० बेसणे ठाउं? इच्छं, खमा० इच्छाकारेण० सज्झाय संदिसाउं? इच्छं, खमा० इच्छा-

---

१ रात्रि का हो तो 'जाव रत्त' अहोरात्रि का हो तो 'जाव अहोरत्त' तीन सामायिक हो तो 'जाव तिय सामाइय' छ सामायिक का हो तो 'जाव छ सामाइय' और दस सामायिक का हो तो 'जाव दस सामाइय' कहना। तीन सामायिक से कम दिसावगासिय नहीं हो सकता, अधिक हो सकता है।

कारेण० सज्झाय करु ? इच्छं ' कह कर तीन नवकार गिन कर समय पूर्ण न हो वहाँ तक धर्मध्यान में वर्त्तना ।

दिशावगासिक मे पेशाब या स्थंडिल की बाधा टालने को जाना पडे तो पौषधविधि मे लिखे मुताबिक विधि से जाना और वापस आकर विधि करना । इसी तरह एकासणा, या आयंबिल करने को जाना हो तो पौषध म लिखित-विधि प्रमाणे करना। रात्रि का दिशावगासिक करनेवाले को 'मांडला' भी करना और दश सामायिक, आगे दिन, अहोरात्रि या अधिक दिन का दिशावगासिक करनेवालों को कपड़ों की पडिलेहणा और उत्कृष्ट देववन्दनविधि म देववन्दन पौषध-विधि मे लिखे मुजब करना चाहिए ।

दिशावगासिक पारने की विधि—

खमासमण द कर, इरियावहि पडिक्कम कर और मुहपत्ति पडिलेह कर ' खमा० इच्छाकारेण० दिसावगासिय पारु ? ' यथाशक्ति ' खमा० इच्छाकारेण० दिसावगासिय पार्युं ? ' तहत्ति ' कह कर, एक नवकार गिनके जीमना हाथ चरवला पर रख कर—

"दिसावगासिय विधे लीधो, विधिएँ पार्यो, विधि करता जे कांई अविधि हुई होय ते सवि हु मन वचन कायाएँ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।"

बाद मे 'खमा० इच्छाकारेण० सामायिक पारवा मुहपत्ति पडिलेहु ? इच्छ' कह कर मुहपत्ति पडिलेहना। फिर 'खमा० इच्छाकारेण०, सामायिक पारु ? ' यथाशक्ति ' खमा०, इच्छाकारेण० सामायिक पार्युं ? ' तहत्ति ' कह कर, एक नवकार गिन कर, जिमना हाथ चरवला पर रख कर 'सामाइयवयजुत्तो०' से सामायिक पार करके 'अविधि आशातना हुई होय मिच्छामि दुक्कड ' कहना।

सामायिक, पोसह और दिसावगासिय म पेशाब करने, स्थंडिल और मन्दिर दर्शन करन के लिये जाते आते समय कम्बल ओढ़ने का काल आषाढ़सुदि पूर्णिमा से कार्त्तिकसुदि १४ तक प्रातः और सध्या के समय छ–छ घडी, कार्त्तिक-सुदि पूर्णिमा से फाल्गुनसुदि १४ तक चार–चार घडी और फाल्गुनसुदि पूर्णिमा से आषाढ़सुदि १४ तक दो–दो घडी का जानना चाहिये।

समाप्तमिति।



खाचरौद-प्रतिष्ठोत्सव ।

सभा में मेरी करियो॰, ए राह—

आनन्द रंग बरसे खाचरौद के माई ॥ आ० ॥ टेर ॥
मन्दिर शान्तिनाथ का भारी, पोरवालगली खाचरौद मझारी ।
मूर्त्ति सुन्दर मन हरनारी, आनन्द मंगल दाई ॥ आ० ॥ १ ॥
धन्य दिग्विचंद ह बलिहारी, गुरुमन्दिर बनवाई भारी ।
राजेंद्रविलास नाम किया जारी, नमकमंडी के माई ॥आ०॥२॥
माघमास ग्यारस उजियारी, चन्द्रवार निर्वाणु मझारी ।
दंड कलश अरु ध्वजा मनुहारी, प्रात काल के माई ॥आ०॥३॥
आठ सोलह मुहूर्त्त सधवाया, जैसा यतीन्द्रसूरि फरमाया ।
विधिसहित सब कार्य कराया, विविध वाजिन्त्र बजवाई ॥ आ० ॥४॥
अट्ठाई महोत्सव सुखदाई, अंग रचना जिनभक्ति कराई ।
त्रिविध प्रकारी पूजा भणाई, सुंदर ठाठ बनाई ॥ आ० ॥ ५ ॥
बेण्ड बाजा और बजे सरनाई, वरघोड़ा रथयात्रा माई ।
ॐ अर्हं की ध्वनि लगाई, जगगुरु शब्द गुंजाई ॥ आ० ॥ ६ ॥
गुरु आज्ञा सर धार पधारे, वल्लभ कल्याण नीति रंग भारे ।
लम्बा विहार कष्ट सह भारे, पहुंचे उत्सव माहीं ॥ आ० ॥ ७ ॥
न्याय चरण इन्दौर से आये, दानविजयश्री पास ठहराये ।
छहों मुनि के दर्शन पाये, धन्य घड़ी सुखदाई ॥ आ० ॥ ८ ॥
फूल उत्तमश्री आदि सारी, नागदा से उत्सव में पधारी ।
गंभीरश्रीसा शिव ले लारी, बड़नगर से आई ॥ आ० ॥ ९ ॥
महेन्द्रविजयजी रेलविहारी, पंडित [illegible] के भारी ।
और हम सब आए लारी, [illegible] ॥ आ० ॥ १० ॥

श्रावक श्राविका श्रीसंघ आया, चउविध संघ का दर्शन पाया ।
धन्य भाग्य यह दिवस सवाया, धवल मंगल वरताई ॥आ०॥११॥
लेखिनी से लिखा नहीं जावे, उत्सव में जो आनंद आवे ।
हर्ष से हिरदा उमड़ा जावे, कहाँ लग करूं बड़ाई ॥आ०॥ १२॥
खाचरौद संघ की बलिहारी, गुरुभक्ति शुद्ध श्रद्धा धारी ।
श्रीसंघ सेवा कीनी भारी तन मन धन को लगाई ॥आ०॥ १३॥
यतीन्द्रमंडल स्थापा सुखदाइ, उगणीसो अठात्तर माहीं ।
गुरुसप्तमी दिन आनंददाइ, निम्बाहेडा माई ॥ आ० ॥ १४ ॥
सूरिराजेन्द्र के चौथे पट पर, सूरियतीन्द्र छवि देख इट कर ।
श्रद्धा अटलें कुंदन के घट पर, जय बोलो गुरुराई ॥ आ० ॥ १५ ॥

श्रीशान्तिजिन-स्तवनम् ।

सुधारो भारत को भगवान०, ए राह—

तिराओ सेवक को भव नाव ॥ ति० ॥ टेर ॥
शान्तिजिनेश्वर हो भवतारक, तारक मोह-गजेन्द्र ।
सुन कर आया महिमा तेरी, सेवित चौसठ इन्द्र ॥ ति० ॥ १ ॥
निरलज्ज मुझे देखकर स्वामी, अपनाओ जिनराज ।
दीनदयालु दान दिखाओ, भिक्षुक आया आज ॥ ति० ॥ २ ॥
कोईक पुन्योदय से पाये, अचिरात्मज तार ।
मायानटवी मम मन मोहे, आवागमन निवार ॥ ति० ॥ ३ ॥
मूर्ख नराधम पातिकी मैं हूं, आया तुम दरबार ।
कुमति कुसंग निवारो अब, अरजी बारबार ॥ ति० ॥ ४ ॥
राजेन्द्र बने त्रिजग-पूजित, प्यारे पद अरविन्द ।
चिमेलनगरे ताहि मुद्रा, यतीन्द्र विद्या वन्द्य ॥ ति० ॥ ५ ॥